

परिशिष्ट

मेरा जन्म 1 मई 1935 को उत्तर प्रदेश के पूर्वतीर्थ जंमल **मेरा बचपन**

अल्मोड़ा जिले के जोस्यूड़ा (जोशियोंकागाँव) नामक गाँव में हुआ था। मेरे पिता स्वाधीनता - संग्राम से सक्रिय रूप से जुड़े थे। कई बार उन्हें जेल-यात्राओं में जाना पड़ा तथा उनके ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष के कारण परिवार के लोगों को भी अनेक संत्राणों में लगी थी।

गाँव में खेती होती थी। थोड़ा व्यापार भी था। संयुक्त परिवार होने के कारण सारे कार्य चलते रहते थे। पिताजी की जेल-यात्राओं का कुछ प्रभाव तो घर के कामों में पड़ता था, किन्तु बहुत बड़ा आर्थिक संकट नहीं मेलना पड़ता था।

पैदा तो अवश्य मैं जोस्यूड़ा गाँव में हुआ, किन्तु तनपन का सारा समय बीता खेतीखान Khetikhana नामक छोटे से कस्बे में। यह स्थान जोस्यूड़ा से लगभग तीन मील दूर था। लोहाघाट से अल्मोड़ा जाने वाली सड़क के किनारे। यहाँ मिडिल स्कूल तक शिक्षा थी। डकलाना था। बाज़ार में कुल 20 - 25 छोटी-बड़ी दुकानें थी।

यहाँ भी हमारा मकान था। खेत थे। दुकान थी, जिस में कपड़े के मलावा दैनिक उपयोग की सामग्री भी निकती थी। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार था। सामाजिक प्रतिष्ठा भी थी। पिताजी लड़े उद्योग थे। जितना कुछ बन सकता था, सब जरूरतमंदों की सहायता करते थे। उनका सारा जीवन देश-सेवा में बीता। सन् 1941 में जब मैं मात्र 6 साल का था, कानपुर में उनका देहान्त हो गया।

चूँकि संयुक्त परिवार था, इसलिए हमारा भरण-पोषण ठीक ढंग से चलता रहा, किन्तु धीरे-धीरे अनेक कठिनाइयाँ उभरने लगीं। कारोबार शिथिल हो गया। आय के साधन सीमित होने लगे, और दायित्व बिरन्तर बढ़ते चले गए।

इससे हमारे संघर्षों का एक नया दौर आरम्भ हो गया। इन संघर्षों ने मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर दिया।

संघर्ष कमि तरदान भी पाइ-होते हैं, आजु जन सोचता है तो लगता है, यदि मैंने लक्षण में अनेक कठिनाइयां न भोली होती, तो शायद मेरे लेखन में संवेदनाओं की तीव्रता कमि भी न आ पाती। भावुक तो मैं था ही जन्म से, किन्तु परिस्थितियों ने उनको एक आशा देकर मुझे कृतार्थ किया। अभाव क्या होता है? उपेक्षा का दर्श कितना-पिड़ाप्रद होता है? मैंने समय से पकले ही, जिंदगी की पाहशाला में पद लिया था।

लेखन के डिडिल स्कूल की पढ़ाई पूरी करके मैं तहाँ से लगभग 60 मील दूर नैनीताल पढ़ने के लिए गया। तब मोटर मार्ग नहीं थी। पैदल ही प्रायः जाना होता था। यह बात है 1948 की।

नैनीताल 5 साल रहा। अधिक उमरों के कारण आगे विशालय में विधित पढ़ पाना सम्भव न रहा तो गोप पढ़ाई प्राइवेट Private-परिक्षाओं से पूरी करता रहा।

दुनपुर (नैनीताल जिले में एक कस्बा है, नेपाल के तारुण्य पर) में कुछ समय अध्यापकी की। यहाँ भी हमारा पुश्तैनी मकान था। इकाने थीं। बगीचा तथा पार्क था। धीरे-धीरे ये सब बिक गए। मैं पढ़ाने के साथ-साथ ट्यूशन भी किया करता था।

नौकरी के लिए जिन जिन प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठा, सब में मेरा चुनाव हो गया। परन्तु मेरे मन में शायद कम और ही करने का इरादा पनप रहा था। मुझे ये सब निरर्थक लगने लगे। हाँ, विश्वविद्यालय में विधित पढ़ने की नड़ी लगन थी, जो संघर्षों के कारण कमि भी पूरी न हो पाई। पता नहीं, लेखक बनने के बर्षों बाद भी मैं सपने देखता रहा कि जैसे मैं परीक्षा दे रहा हूँ या किसी विश्वविद्यालय में दाखिल हो रहा हूँ।

आज मुझे लगता है कि यह अन्धा ही हुआ। मेरी मौलिकता, मेरा मौलिक चिंतन बरकुरार रहा। मैंने इतना अधिक झाँबीच पढ़ा, कि सारी सम्भावनाएँ पूरी हो गईं।

सन् 1948 में गाँधी जी का देहान्त हुआ, तब मैं पहली कविता लिखी थी। सातवीं कक्षा का क्षेत्र था। उम्र थी कोई 13-14 साल।

आके पानात तभी तक कविताएँ लिखता रहा। एक तरह का एक पागलपन जैसा ही था कि परीक्षा के दिनों में भी रात को जाग कर कविताएँ लिख करता था।

फिर साक्षात् एक दिन कहानियों का दौर शुरू हुआ तो वह हुआ था
जलता रहा है — आज तक।

जब टंकपुर में रहा था, महापंडित राहुल सांकृत्यायन की आज्ञा -
कथा 'मेरी जीवन यात्रा' पढ़ कर इतना प्रभावित हुआ कि जीवन में
बुद्ध करने के लिए निकल पड़ा। लिखने पढ़ने की प्रयोगशाला एक
दिन जुद्धे दिल्ली ले आई। दिल्ली में न रहने की ही कोई उचित
व्यवस्था थी, न रोजी-रोटी की। टंकपुर में निज सागपत्र दिए
ही में जला आया था। मिल में काम करने वाले एक रिश्तेदार के
घर पर रहे रहा था। दिल्ली आते ही, जिस मकान में रिश्तेदार
के साथ रहे रहा था, उसके मलिक की जमानत दिला कर दिल्ली
पब्लिक लायब्रेरी का सदस्य बन गया। और अपने नाम से
दो कार्ड बनवा लिए। एकाध ट्यूशन करता, दिन भर पुस्तकालय
में बैठ कर लेख लिखता। शाम को प्रायः पैदल रास्ते बाह्र
माल चल कर डेरे पर पहुँचता। वहाँ जो समय बचता कहानियाँ
लिखता करता था। 'इन्द्रधनुष'

उन दिनों दिल्ली में 'नवनीत' की तरह एक हिंदी डायजेस्ट प्रमाणिक
प्रकाशित होती थी। उसके लिए हर महीने आठ-दस लेख विविध
विषयों पर लिखता। अच्छी कहानियों के अनुवाद तैयार करता। सम्पादक
को भेज देता था। उन्होंने उप सम्पादक के रूप में मेरा नाम प्रकाशित
किया था। जहाँ तक वेतन का सवाल था, वह कुछ भी मिलता न
था। सम्पादक ने कहा था — पत्रिका छोटे में निकल रही है। मैं भी
अवैतनिक काम कर रहा हूँ। आप भी कीजिए। कभी पत्रिका में कुछ
अभ्यर्थी होने लगेगी तो आप - हम सब उसके अधिकारी होंगे।

इहीं संघर्ष के दिनों में मैंने अपनी कहानी 'बुद्ध दीप'
लिखी थी, जो किसी राष्ट्रीय हिंदी दैनिक पत्र के 'रतिवासरीय' में छपी
थी। उन्हीं दिनों 'इन्द्रधनुष' में 'निर्वासन' नाम से लियो
टाल्स्टाय की कहानी The long Exile का हिन्दी रूपान्तर

प्रकाशित हुआ था। मेरी अनुकूल यह पहली प्रकाशित कहानी थी।
और 'बुद्ध दीप' पहली मौलिक कहानी जो प्रकाशित हुई थी।

बचपन से ही मेरे मन में कुछ असामान्यता करने का
संकल्प था। अस्पष्ट भाव था। चित्रकारी का भी बड़ा शौक था।
बचपन से ही चित्र बनाया करता था। इच्छा थी कि ललनचक्र
आर्ट कॉलेज में 5 साल का पाठ्यक्रम पूरा करूँ। या फिर
एक और आकांक्षा — 'शांति निकेतन' में पढ़ने की। पान्थ
ग्रंथ साध पूरी न हो पाई — वह अपने-अपने कारणों के कारण।
अभिलष का भी शौक था। चारों ओर भाग लेता था।
कई पुस्तकालय भी जाते, पान्थ इस दिशा में भी गगन बढ़ने
का मार्ग मिल न पाया। जहाँ तक लिखने का शौक था, यह
विशुद्ध मेरे मन था। इसके लिए किसी साधन का भी

आवश्यकता न थी। लिखने लगा था, रुक-मोहक से। एक ही रचना को बार-बार लिखता। काटता। सुधारता। जब तक वह मेरे मन की मुलाविक न होती, यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती। यह आदत आज भी उसी तरह कायम है।

लेखन के क्षेत्र में मेरा मार्ग निरन्तर प्रशस्त होता चला गया, लगाता लिखता रहा है। कहानियाँ, उप-गाथा, यात्रा-वृत्तान्त, कविताएँ, संस्मरण, साक्षात्कार। शायद ही कोई क्षेत्र छूटा हो।

अनेक संघर्ष किए। गत २२ साल से पत्रकारिता में हूँ, लिख भी रहा हूँ।

1965 में मेरा पहला कहानी-संग्रह 'अन्तरः' प्रकाशित हुआ। उसी वर्ष पहला उप-गाथा 'बुर्राँश फूलने लगे हैं।' (जो बाद में 'सरण्य' नाम से छपा) प्रकाश में आया। 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' का पुरस्कार भी इसमें मिला। इन्हीं दिनों बच्चों के लिए भी लिखता रहा। 'तीन तारे' नाम से एक उप-गाथा लिखता जो इलाहाबाद से प्रकाशित बाल मासिक पत्र 'मनमोहन' में धारावाहिक रूप से छपा था। यह सम्भवतः पहला बाल-उप-गाथा था जो धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था।

दिल्ली आने पर हिन्दी के प्रायः सभी लेखकों का हस्तमिला। जैनेन्द्र कुमार, राहुल सांकृत्यायन, इलाजुद्दोजी, यशपाल, भगवतीराज वर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, वृंदावनलाल वर्मा — नक्षत्रों की एक लग्नी कलार हैं।

दिल्ली में पढ़न-पाठन का भी क्रम चलता रहा। थोड़ी-सी जर्मन सीली। तिब्बती सीली। बांग्ला सीली। गुजराती, नेपाली का भी कुछ अभ्यास किया। Painting का भी कुछ प्रयास चला। किन्तु समय की कमी से रह गया।

दिनांक १०/१०/७१

मैं सरोकार

पश्चिमी
दिमाग

1

हिरवरा का आदि लंता है ~~खामोश~~, और कहीं अन्त भी
पर गुंथे लगता है कभी-कभी कि जीवन का न तो कहीं
आरम्भ है और न कहीं अन्त ही। एक अंतहीन-यात्रा प्रवास
का यह एक ^{मात्र} काल-खण्ड है। शायद इसी रूप में इसे लेना,
और इसे जीना अधिक ~~सुखद~~ ~~सुख~~ प्रयत्न है।

आगा रौं पैलेस जेल में मृत्यु से कुछ दिन पूर्व तक कसूर
ना को गाँधीजी नारंगी के दाने में, रेखाएँ खींच कर अकांश
और देशान्तर समझाते थे। कौन-सा देश कहाँ है? किस देश
की राजधानी का नाम क्या है? विस्तार से बतलाते थे।

विनोबा भावे अपने अन्तिम दिनों में जापानी भाषा
सीख रहे थे।

95 वर्ष की मनस्था में आचार्य काका ~~का~~ कालेलकर
आतशी शीशु की सहायता से शब्द कोश में एक-एक शब्द का
अर्थ खोजते, ~~अथ~~ मानचित्र में एक-एक स्थान ढूँढ़ते।

आखिर क्यों?

शायद निरन्तर परिमार्जन का ही दूसरा नाम जीवन है।
तलिए कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, अगली यात्रा का आरम्भ है।

आज पीछे मुँडकर देखता हूँ तो अतीत के कई चल-चित्र
सामने धूमने लगते हैं। सब से पहले दिखते हैं, दूर-दूर छितरे
पर्वतीय गाँव। उस पार नफीले पहाड़ों की ^{दुर्ग} गालर। एक सीमाहीन
विस्तार लिए धुंधला, नीला क्षितिज—शून्य में कहीं विलीन होने
के लिए आतुर।

सामने हरी-भरी घाटियाँ ^{नहीं बसाई} गहरे हरे घने जंगल। टेढ़ी-मेढ़ी
धूलभरी कच्ची पगडंडियाँ। दिनों तक लगातार बरसते बादल।
नदी की घाटियों से उभरता ^{हवा} कुहासा। सूरज खोजने पर भी कहीं

द्वारतन न था। उस पर भूल से कहीं ^{गो} मलक जाता तो कितना
 मोठा लगता। पीलो-पीली धूप में ^{कितनी} कितनी अच्छी।
 उध में तप नहीं, मात्र तप का जैसा अहसास होता।

जाड़ों में जल चारों ओर सफेद बर्फ की चादर बिछती तो
 सब सचमुच ^{कितनी} आनंदकारी होता। इतनी ठण्ड, इतनी ठण्ड कि ^{पड़ोसी} पत्तियों
 तक ठिठुरने लगतीं। पानी जम जाता ^{बर्फ} तब भी को आँच पर पिघला
 कर हमें ^{पानी लसकर} पीते थे।

सब, कितने अच्छे दिन थे वे। जब किसी भी चीज की कोई
 चिन्ता न थी। चारों ओर खुशी ही खुशी। न वर्तमान का संकट,
 भविष्य की आशंका। यह नशा संसार ही ^{तब} अपना समूचा ^{संसार} ब्रह्मण्ड था।
 जहाँ फूल ही फूल थे, कहीं दूँद से भी कोई काँटा नहीं...

ऐसे तातावरण में बीता था बचपन। कुमाऊँ की रूपहली
 पहिड़ियों में।

सीढ़ीनुमा खेत। अंधेरे, घने वनों ~~में~~ ~~जहाँ~~ ~~कभी~~
~~कोई~~ ~~भी~~ ~~नहीं~~ ~~था~~ ~~जहाँ~~ ~~मेरे~~ ~~दिन-दोपहर~~ ~~बाघ-भालू~~ ~~सीना~~ ~~ता~~
 निर्द्वन्द्व घूमते। किसी को भी उठाना और उठा कर ले जाना, अ
 बात थी। जिम कार्वेट की आरेखणशुली यही थी। यहीं देवी
 का देवी सिंह था और यहीं था ^{कार्वेट} ~~का~~ ^{का} ~~मैन ईटर ऑफ~~
 चम्पावत। जिस पर बनी हॉलिवुड की फिल्म बर्षों बाद क
 ने नीतल में देखी थी। उस में जंगल तो थे, पर हमारे यहाँ
 जैसे जंगल नहीं। न वैसे घर, न गाँव, न गाँवों। लगता था,
 अफ्रीका का मैं कहीं कुमाऊँ ^{सोच लिया था उसने।} ~~जहाँ~~ ~~कभी~~ ~~नहीं~~
 मेरे ऐसे प्राकृतिक ~~सिनेमा~~ ~~हॉल~~ ~~में~~ ~~बड़े~~ ~~बड़े~~ ~~सच~~ ~~ने~~ ~~हाथ~~ ~~हि~~
 हुए ~~प्रकृतिक~~ ~~सिनेमा~~ ~~हॉल~~ ~~में~~ ~~कभी~~ ~~नहीं~~ ~~था~~ ~~जहाँ~~ ~~कभी~~ ~~नहीं~~ ~~था~~
 फिल्म है ~~प्रकृतिक~~ ~~सिनेमा~~ ~~हॉल~~ ~~में~~ ~~कभी~~ ~~नहीं~~ ~~था~~ ~~जहाँ~~ ~~कभी~~ ~~नहीं~~ ~~था~~
 इसीलिए तो साली फिल्म नालती है... उसकी दार्शनिक

आज भी स्मृति पथ पर चली है कहीं।

आखिर जब जब आरम्भ किया
'की पाठी' लिए पढ़ने के लिए पाठशाला जाते और दो दुनी चार का
पहाड़ मला फाड़ कर चौराते हुए दोहराते। पर आज लगता है,
दो दुनी चार का अर्थ जीवन पर्यन्त कभी सही अर्थ में समझ
में आया नहीं। सर्वत्र पोंन ही रहा था मात्र तीन ही। चार ससखाकार
कभी नहीं हुआ। वर्षों बाद जब परब कुछ-कुछ उग आए तो घोंसले
से बाहर भांकना शुरू किया। अब तक घोंसला ही ब्रह्माण्ड था,
तब कभी सोचा नहीं था कि ब्रह्माण्ड ही कभी घोंसले का पर्दा
भी बन जाएगा...

वर्षों बाद जब मेरा 'दिल्लीवास' हुआ तो ते पहाड़, ते भरने,
वह हिम शीतल वयार, कभी शरीर को धार की तरह झिलती थी,
उसकी स्मृति ही कहीं सुख का अहसास जतलाने लगी।
जबकि मैं जहाँ भी शहर का क्लोरीन मिला स्वादरहित पानी पीने
लगा तो लगा कि नहीं पानी का भी अपना कोई स्वाद होता है
हवा भी मात्र हवा नहीं होती, उसमें भी एक प्रकार की जीवन दायिनी
होती है। लू के थपेड़ों से फुलसा मन, फुलसा मन बार-बार
पहाड़ों की छाँह के लिए तरसता... पर इतनी लम्बी बाँहें कहाँ
कि उन्हें छू पाता!

चलने का नाम ही जीवन है न। चलते-चलते आज
आज 'दिल्लीवास' के ही चालीस साल बीत गए।
साल बीत तो दूरे के दिन भी फिरते हैं। पर दिल्ली के धरु में
पड़े-बड़े बरसों लोगों के दिन कब फिरेंगे।

पर पता नहीं, मन बार-बार क्यों करता है, वहीं लौट
जाने को? जहाँ से चले गे, कभी रंग-विरंगे सपने सँजोकर।
कुछ न कुछ तो मिल जाता है त जीवन में। फिर भी कहीं कुछ
अधरा-सा ही क्यों रह जाता है?

[illegible]

उत्तर मात २१६१

उससे कही अधिक होता है ^{उत्पत्ति} पर मनुष्य का अंकगणित कुछ और होता है शाब्द । जो उपलब्ध नहीं है, वही उसे दुर्लभ लगता है ।

यात्रा' पढ़ी थी। उसने इतना प्रभावित किया कि मैं भी निकल
पड़ा था, जो ही अन्त ज्ञाने, अन्त देखे मैं। नवाजिंदा ताजिन्या का
शेख 'सैर कर दुनिया की गाफिल' मेरा भी जीवन-मंत्र
बन गया...

यात्रा में मैं भी ^{कहा} सहभागी रहा। उनके साथ कदम पर कदम मिल
कर ^{मध्य एशिया,} तिब्बत, लाहौल - स्पोती, नेपाल आदि स्थानों की यात्राएं
करता रहा। डे-पुर्, सेरा, गानदन, साक्पा के बौद्ध-विहारों
को जैसे मैंने भी अपनी आंखों से देखा।

उप-शास 'अग्नि-सन्तान' लिखता और ^{उसका चिह्न} भारत में रख रहे, हिंदी जानने वाले ^{किन्हीं} विद्वत् विद्वान को पढ़ने के लिए दिया,

तो वह किसी भी तरह यह मानने को तैयार नहीं थे कि मैं तब
 तब्लत नहीं देखा है। क्योंकि उनका कहना था कि जिन एगनों
 का जो चित्रण मैंने किया है, बिना वहाँ गए कोई कर ही नहीं
 सकता।

आज इस बात को भी लगभग 35 साल हो गए हैं।
 यह शायद 1954 का वर्ष था, जब मेरी पहली कहानी
 छपी थी। तब से किसी न किसी रूप में लिखने का क्रम निरन्तर
 चलता रहा। पुस्तकें भी छपीं। कुछ पुरस्कार भी मिले, पात्र
 मेरे लिए सब से बड़े ^{उपलब्ध} हैं। पाठकों का निर्याज, निश्चल-
 स्नेह। इस दृष्टि से मैं स्वयं को सांगणशाली समझता हूँ। सन् 1972-73
 में 'छाया मंत्र' छूना मन' उपन्यास 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के
 विशेषांक में छपा तो अनेक शंकाएँ थी, मन में ^{यथा-यथा गया} ~~क्या-क्या~~ भी
~~आ-आ~~ अपना ही उपन्यास ^{छाप दिया}। कहीं विफल रहा तो कितनी बदनामी
 होगी। किन्तु छपते ही पाठकों के पत्रों का जो झन्झट लगा, वह
 स्वयं मेरे लिए विस्मय की बात थी। इतने पत्र शायद ही किसी
 रचना पर कभी आए हों।

'कगार की आग' का अनुभव भी ऐसा ही विचित्र रहा।
 पैडिंग विश्व विद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक प्रो. लघु-को तब
 का पत्र आया कि यह तो शत प्रति शत उनके अपने परिवार की
 कथा ^{कथा} है, मैंने कहाँ से लिखी? क्यों?
 पिछले तर्ग ^{के संघर्ष पर आधारित} इस कथा पर कम तूफान न उठा। जहाँ
 एक ओर सैकड़ों की संख्या में पत्र थे, वहाँ ऐसी प्रतिक्रियाएँ भी
 काम ^{उभरी} नहीं, जिस पर ~~आरोप~~ कि मैंने पर्वतीय जन जीवन का
 कुर्वल पक्ष उजागर कर अपराध किया। तभी अकस्मात् यशपालजी
 का पत्र मिला, जिस से सारा तबड़ हटा, वही तो शायद इसी कारण
 त्यागपत्र देना पड़ सकता था मुझे।

सामग्य सारा विर्जित स्वर्ग करता है। यही ~~सामग्य~~ आज में सब से उसके उपयोगों में गिना जाता है। जिसका अनेक भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त तमिल, मीना, मंग्रेजी, नानेजिगन आदि में भी रूपान्तर हुआ।

इन के लिखे जाने का सारा प्रेम भाई मनोहर श्याम जोशी को है। वे पीछे ५५-५६ के लिखवाते तो शायद ये लिखे ही नहीं जाते कभी। लिखने की भी नितान्त वैयक्तिक साधना मानता है। समूहों में समूह की तरह जिया जा सकता है, परन्तु जहाँ तक व्यक्ति का अपना लिखना है, वहाँ वह कहीं समाज से जुड़ने के बावजूद अकेली ही यात्रा है—बाहर से अधिक, भीतर की यात्रा।

साफल्य लेखक ^{प्रगः} कहीं व्यक्तिगत जीवन में असफल होता है। लिखने में जो अंकगणित का अर्थशास्त्र राजनीति और व्यवसाय में अत्यधिक उपयोगी होता है, साहित्य, संस्कृति एवं अध्यात्म में पूर्ण रूपेण विफल रहता है।

साहित्य की शक्ति बिना पूरी कीमत चुकाए पूरी नहीं होती। 'शॉर्टकट' के लिए वहाँ स्थान नहीं। मुझे लगता है, स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की सोच में शायद यही कुछ नुटि रह गई। भौतिकतावाद के धुंध के कारण अनेक भ्रम व्याप्त रहे, और आज भी उनसे मुक्ति की राह दीखती नहीं।

साहित्य एकान्त के अतिरिक्त पूर्ण समर्पण भी चाहता है। कहीं। और निष्ठा भी। बिना इन के जो रचा जाता है, वह साहित्य कहलाने के बावजूद सचमुच में साहित्य नहीं होता। मुझे

लगता है, जो साहित्यकार कुछ बगलजगी दे जाने में सफल होते हैं, उनके मानवीय दुर्बलाएँ उनमें होते हुए भी कुछ ऐसा होता जो उन्हें हिमालय से भी ऊँचा उठा देता है। छोटा व्यक्तित्व कभी महान कृति की सृष्टि नहीं कर सकता।

रह।

लगता है, हमारे देश में लेखन आजीविका का आधार नहीं पकड़ा वह मुग और शाजब बिराला, पन्त, गणपाल, जैनेन्द्र कुमार जैसे साहित्यकार मुक्त-लेखन पर जी पाए। मुझे तो करना था, मुझे भी पत्रकारिता को ही अपना लिए। लगभग

तीस साल तक उससे जुड़ा रहा। अरुचि उसके प्रति नहीं रही, परन्तु लेखन में पूरा समय न दे जाने की व्याधा सदैव शाली रही। मुँह में रातें गर्ग ^{उगलना} दूध की तरह, न उसे ~~खजाना~~ समझ था, न निगल ^{पाया} ही। स्वतंत्र होकर जीने का सख, परतंत्र ^{हूँ} रहने के बाद ही आकाशवाणी कि अब अन्ततः उस से मुक्त ~~हूँ~~, इसलिए एक

प्रकार की आश्वस्ति अनुभव करता हूँ। एक तरह की मुक्तता की। मंजिल पर पहुँच कर ही सारी थकान जैसे अपना अहसास जगाती है उसी तरह मुझे भी ~~लिखने के~~ सीमित समय में असोमित अर्पित करने लालसा बेचैन किए रखती है।

पढ़ने के लिए इतनी पुस्तकें पड़ी हैं, लिखने के लिए इतना अशाह, घूमने के लिए सारा संसार। अभी देखा ही जा रहा है पढ़ा ही क्या है? लिखा ही क्या है? दस जनम की काल-अवधि भी कम लगती है।

पता नहीं क्यों बार-बार मुझे यही लगता रहा है कि लेखक की पहली और अन्तिम प्राथमिकता लेखन ही हो सकती है, और कुछ नहीं। परन्तु परिस्थितियों के दबाव के कारण लेखक की स्थिति सदैव इस से विपरित ही रही है। नड़ी-नड़ी प्रतिमाएँ छोटे-छोटे कागजों में उलझ कर खय को नष्ट करती रही हैं। शायद इसी में खन का

राम का भाला । व्यवस्था को भी यही सब गस जाता रहा । एक सुकरांत को यह संसार आज तक गंजेल नहीं जागा, यदि गूल से कुछ और हो जाते तो न जाने क्या होता ।

चौबीस घण्टे के दिन-रात में लेखन के लिए कम से कम पचास घण्टे चाहिए । परन्तु आज प्रथिः सारी पीढ़ी इसे मात्र पाई-टाइम जॉब की तरह ली रही है । भाला नारतुरों से आदमी कितनी क्षमियां खुरच सकता है ।

‘नन्धन रहित ^{चिंतन} ~~विचार~~’ मुक्त लेखन की आवश्यक शर्त है । व्यवस्था के साण ^{कोई} जीवन भर जुड़कर, चाहे गाअनवाह, जाने या अनजाने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उसका अभिन्न अंग बन कर, अपनी धार किस तरह कागम रख सकता है ? इसलिए इतिहास के पटल पर उस देश का भाग्य ^{सारी कोलप} अधर पर ही अटका रह जाता है, जहाँ स्वतंत्र-चेतना के विकास की सम्भावना नहीं रहती । ऊर्ध्व गामी चिन्तन एवं जीवन का प्रभाव ही समस्त समाज को कहीं ऊर्ध्व की ओर लेजाने में सफल हो पाता है ।

हमारे यहाँ, विशेषकर हिन्दी में ऐसी परिस्थितियाँ बन नहीं पाई, शायद इसीलिए लेखन की गुणवत्ता में भी कहीं कुछ अन्तर रहा ।

अब तक जितना लिख पाया, उस से असंतोष नहीं है । सच कहूँ तो सन्तोष का भी कोई कारण नहीं है । हमेशा यही लगता रहा और आज भी यही लगता है कि जो कुछ सचगुच में लिखना चाहता था, उसे लिखा जाना अभी शेष है । उसी शेष की प्रतिष्ठा है ।

मुनत रूप से लेखन कार्य का अब एक वर्ष पूरा होने को है । यों तो छ दो-चार नई इतियाँ और जुड़ गई हैं, मेरे ^{नए} ~~समय~~ ~~लेख~~ पर इस समय जो लिख रहा हूँ, शायद वह मेरे लिए अधिक आत्म सन्तोष का कारण बन पाए । कुछ नई उप-यासों पर ^{उप} काम किया था कभी, अब उन्हें पूरा करने का शायद कुछ अवकाश मिले ।

पता नहीं कितना कुछ पूरा होगा, कितना अधूरा रह जाएगा।
 मैंने कहा था न कि यात्रा का ^{ही समापन} ~~समापन~~ होगा है, दूसरी यात्रा का।
 इसलिए इन पड़नों पर क्या ठिठकना ? क्या रुकना ? क्या जोड़ना, को
 घटाना ? ये सारे अंकगणित के प्रश्न बगल पर छोड़ना हितकर है।
 न सफलता का कोई अर्थ है, न विफलता का। दोनों अर्थपूर्ण
 होने हुए भी क्या स्वर्ग में उलझीन नहीं ? D

Handwritten signature

45.94.

ਮਾਨਸਰੋਵਰ ਵਿਖੇ, ਫੋਨ - ੨੪, ਟਿਕੀ - 110091.

Ph. 2252330

हिमांशु जोशी

7 / सी - 2 हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स, नयूर विहार, फेज - एक, दिल्ली - 110091 दूरभाष : 2252330

प्रिय किशोर जी,

पत्र मिला । दोनों पुस्तकें वी.पी.पी.से भेजने के लिए मैं
किताब घर प्रकाशन / दरियागंज, नई दिल्ली से कहा है ।
आशा है, वे आपको शीघ्र प्राप्त होंगी । यदि किसी कारण
न मिल पाएँ तो भूझे अन्ततः करना ।

शोध का विषय अच्छा है । मेरे योग्य जो कार्य हो, निःस्कोच
लिखना । अनिल का भी पत्र आया था, आपका उल्लेख था ।

शेष श्रद्धा ।

सस्नेह,

॥ हिमांशु जोशी ॥

दिनांक: 28 11 98

श्री किशोर पाटील,

द्वारा डॉ० अनिल साल्वे,

हिन्दी विभाग,

शिवाजी विश्वविद्यालय,

कोल्हापुर - 416004 ॥ महाराष्ट्र ॥

PARHAM PAPER MILL 31

0672. 05.10.66

FRIEDMAN

0

प्रिय किशोर,

आपकी 28.8.66 का पत्र मिली के पत्र पर
मिलता था। इस बीच अनेक कारवचारों में विरो
ध करने के कारण यथा समय उत्तर नहीं
पाया। इसको लेकर खेद है।

0

इंग्लैण्ड में अभी 'बड़ा अन्तराष्ट्रीय हिन्दी
विश्व सम्मेलन' था। उस में शामिल होकर कल
नाई बहोमी। महीने में दो बड़े रसते हैं।
उक्त परकूर हैं। दूसरी बार परकूर।
अपने अनेकों के साथ साथ न मात्र दस वर्षों
से ओस्लो (नार्वे) से दो पत्रिकाओं में
प्रकाशित करते हैं। यहाँ अब इन्हीं पत्रिकाओं
का सम्मरोह है। शक्ति इन्हीं साहित्यिक पत्रिका
हैं। 'आपना ही रास्ता' सम्पादक सम्पादक।

0

आपका ओष काशी काव्यविशेष वाला पत्र
जान कर प्रसन्न हुई। प्रश्नों के उत्तर हैं -
1. पक्षधरों का नाम बौद्धों में राम, बदाम,
पोपल आदि के वृक्षों में होते हैं।
2. पक्षधरों की तरह ही (जैसे पक्षधर में ही
अनेकों से मिलते हैं) बड़े बड़े वन अनेकों में हैं।
यहाँ रामलीला समेत और बड़े समारोहों काव्य होते हैं।
3. मेरे साहित्य पर मीठापुर में भी, बरत,
सामय, गहर, दिदी, पंचरत्न, सप्तम
आदि अनेक विश्वविद्यालयों से लेख होते हैं।
यहाँ फिल्म के नाम-पान्ना नामका और

১৯৭৬ সালের ১৫ আগস্ট ১৯৭৬

5. 4. 151 109 1511 222 0 513 1000 513 1000 1000 1000
 5. 4. 151 109 1511 1000 1000 1000 1000 1000 1000
 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000

()

३५ श्री ३ (३५) श्री ३ ३५ ३५ ३५ ३५
 ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५
 ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५
 ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५
 ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५ ३५

○

31. 215 418 625 832 1040 1248 1456 1664 1872 2080 2288 2496 2704 2912 3120 3328 3536 3744 3952 4160 4368 4576 4784 4992 5200 5408 5616 5824 6032 6240 6448 6656 6864 7072 7280 7488 7696 7904 8112 8320 8528 8736 8944 9152 9360 9568 9776 9984 10192 10400 10608 10816 11024 11232 11440 11648 11856 12064 12272 12480 12688 12896 13104 13312 13520 13728 13936 14144 14352 14560 14768 14976 15184 15392 15600 15808 16016 16224 16432 16640 16848 17056 17264 17472 17680 17888 18096 18304 18512 18720 18928 19136 19344 19552 19760 19968 20176 20384 20592 20800 21008 21216 21424 21632 21840 22048 22256 22464 22672 22880 23088 23296 23504 23712 23920 24128 24336 24544 24752 24960 25168 25376 25584 25792 26000 26208 26416 26624 26832 27040 27248 27456 27664 27872 28080 28288 28496 28704 28912 29120 29328 29536 29744 29952 30160 30368 30576 30784 30992 31200 31408 31616 31824 32032 32240 32448 32656 32864 33072 33280 33488 33696 33904 34112 34320 34528 34736 34944 35152 35360 35568 35776 35984 36192 36400 36608 36816 37024 37232 37440 37648 37856 38064 38272 38480 38688 38896 39104 39312 39520 39728 39936 40144 40352 40560 40768 40976 41184 41392 41600 41808 42016 42224 42432 42640 42848 43056 43264 43472 43680 43888 44096 44304 44512 44720 44928 45136 45344 45552 45760 45968 46176 46384 46592 46800 47008 47216 47424 47632 47840 48048 48256 48464 48672 48880 49088 49296 49504 49712 49920 50128 50336 50544 50752 50960 51168 51376 51584 51792 52000 52208 52416 52624 52832 53040 53248 53456 53664 53872 54080 54288 54496 54704 54912 55120 55328 55536 55744 55952 56160 56368 56576 56784 56992 57200 57408 57616 57824 58032 58240 58448 58656 58864 59072 59280 59488 59696 59904 60112 60320 60528 60736 60944 61152 61360 61568 61776 61984 62192 62400 62608 62816 63024 63232 63440 63648 63856 64064 64272 64480 64688 64896 65104 65312 65520 65728 65936 66144 66352 66560 66768 66976 67184 67392 67600 67808 68016 68224 68432 68640 68848 69056 69264 69472 69680 69888 70096 70304 70512 70720 70928 71136 71344 71552 71760 71968 72176 72384 72592 72800 73008 73216 73424 73632 73840 74048 74256 74464 74672 74880 75088 75296 75504 75712 75920 76128 76336 76544 76752 76960 77168 77376 77584 77792 78000 78208 78416 78624 78832 79040 79248 79456 79664 79872 80080 80288 80496 80704 80912 81120 81328 81536 81744 81952 82160 82368 82576 82784 82992 83200 83408 83616 83824 84032 84240 84448 84656 84864 85072 85280 85488 85696 85904 86112 86320 86528 86736 86944 87152 87360 87568 87776 87984 88192 88400 88608 88816 89024 89232 89440 89648 89856 90064 90272 90480 90688 90896 91104 91312 91520 91728 91936 92144 92352 92560 92768 92976 93184 93392 93600 93808 94016 94224 94432 94640 94848 95056 95264 95472 95680 95888 96096 96304 96512 96720 96928 97136 97344 97552 97760 97968 98176 98384 98592 98800 99008 99216 99424 99632 99840 100048 100256 100464 100672 100880 101088 101296 101504 101712 101920 102128 102336 102544 102752 102960 103168 103376 103584 103792 104000 104208 104416 104624 104832 105040 105248 105456 105664 105872 106080 106288 106496 106704 106912 107120 107328 107536 107744 107952 108160 108368 108576 108784 108992 109200 109408 109616 109824 110032 110240 110448 110656 110864 111072 111280 111488 111696 111904 112112 112320 112528 112736 112944 113152 113360 113568 113776 113984 114192 114400 114608 114816 115024 115232 115440 115648 115856 116064 116272 116480 116688 116896 117104 117312 117520 117728 117936 118144 118352 118560 118768 118976 119184 119392 119600 119808 120016 120224 120432 120640 120848 121056 121264 121472 121680 121888 122096 122304 122512 122720 122928 123136 123344 123552 123760 123968 124176 124384 124592 124800 125008 125216 125424 125632 125840 126048 126256 126464 126672 126880 127088 127296 127504 127712 127920 128128 128336 128544 128752 128960 129168 129376 129584 129792 129999 130207 130415 130623 130831 131039 131247 131455 131663 131871 132079 132287 132495 132703 132911 133119 133327 133535 133743 133951 134159 134367 134575 134783 134991 135199 135407 135615 135823 136031 136239 136447 136655 136863 137071 137279 13

○

0
 ਮੇਰੀ ਰਾਖੀ ਕਰੋ ਮੈਂ ਜਾਂ ਗੁਰਮਤ / ਸਦਾ ਤੇਜ਼ ਹੋਵਾਂਗੀ
 ਤੇਰੇ ਪਿਆਰ ਦੇ ਫਲ

0

O
A⁰
18 319 296 को 319 296 का 2 भाग।
29 को 219 12104 को 2 भाग।

0

21 Feb 68

21-1-16

११। वि. १०८ ३३४-६ ३३४ ३३४ ३३४,
३३४ ३३४ ३३४